'आह, बुद्धि कहती कि ठीक था, जो कुछ किया, परन्तु हृदय,
मुझसे कर विद्रोह तुम्हारी मना रहा, जाने क्यों, जय?
अनायास गुण-शील तुम्हारे, मन में उगते आते हैं,
भीतर किसी अश्रु-गंगा में मुझे बोर नहलाते हैं।

'जाओ, जाओ कर्ण ! मुझे बिलकुल असंग हो जाने दो,
बैठ किसी एकान्त कुंज में मन को स्वस्थ बनाने दो।
भय है, तुम्हें निराश देखकर छाती कहीं न फट जाये,
फिरा न लूँ अभिशाप, पिघलकर वाणी नहीं उलट जाये।'

इस प्रकार कह परशुराम ने फिरा लिया आनन अपना,
जहाँ मिला था, वहीं कर्ण का बिखर गया प्यारा सपना।
छूकर उनका चरण कर्ण ने अर्घ्य अश्रु का दान किया,
और उन्हें जी-भर निहार कर मंद-मंद प्रस्थान किया।

परशुधर के चरण की धूलि लेकर,
उन्हें, अपने हृदय की भक्ति देकर,
निराशा से विकल, टूटा हुआ-सा,
किसी गिरि-शृंग से छूटा हुआ-सा,

चला खोया हुआ-सा कर्ण मन में,
कि जैसे चाँद चलता हो गगन में।

तृतीय सर्ग

हो गया पूर्ण अज्ञात वास, पांडव लौटे वन से सहास,
पावक में कनक-सदृश तप कर, वीरत्व लिए कुछ और प्रखर,
नस-नस में तेज-प्रवाह लिये,
कुछ और नया उत्साह लिये।

सच है, विपत्ति जब आती है, कायर को ही दहलाती है,
शूरमा नहीं विचलित होते, क्षण एक नहीं धीरज खोते,
विघ्नों को गले लगाते हैं,
काँटों में राह बनाते हैं।

मुख से न कभी उफ कहते हैं, संकट का चरण न गहते हैं,
जो आ पड़ता सब सहते हैं, उद्योग-निरत नित रहते हैं,
शूलों का मूल नसाने को,
बढ़ खुद विपत्ति पर छाने को।

है कौन विघ्न ऐसा जग में, टिक सके वीर नर के मग में?
खम ठोंक ठेलता है जब नर, पर्वत के जाते पाँव उखड़।
मानव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है।

गुण बड़े एक से एक प्रखर, हैं छिपे मानवों के भीतर,
मेंहदी में जैसे लाली हो, वर्तिका-बीच उजियाली हो।
बत्ती जो नहीं जलाता है
रोशनी नहीं वह पाता है।

पीसा जाता जब इक्षु-दण्ड, झरती रस की धारा अखण्ड,
मेंहदी जब सहती है प्रहार, बनती ललनाओं का सिंगार।
जब फूल पिरोये जाते हैं,
हम उनको गले लगाते हैं।

वसुधा का नेता कौन हुआ? भूखण्ड-विजेता कौन हुआ?
अतुलित यश क्रेता कौन हुआ? नव-धर्म प्रणेता कौन हुआ?
जिसने न कभी आराम किया,
विघ्नों में रहकर नाम किया।

जब विघ्न सामने आते हैं, सोते से हमें जगाते हैं,
मन को मरोड़ते हैं पल-पल, तन को झँझोरते हैं पल-पल।
सत्पथ की ओर लगाकर ही,
जाते हैं हमें जगाकर ही।

वाटिका और वन एक नहीं, आराम और रण एक नहीं।
वर्षा, अंधड़, आतप अखंड, पौरुष के हैं साधन प्रचण्ड।
वन में प्रसून तो खिलते हैं,
बागों में शाल न मिलते हैं।

कङ्करियाँ जिनकी सेज सुघर, छाया देता केवल अम्बर,
विपदाएँ दूध पिलाती हैं, लोरी आँधियाँ सुनाती हैं।
जो लाक्षा-गृह में जलते हैं,
वे ही शूरमा निकलते हैं।

बढ़कर विपत्तियों पर छा जा, मेरे किशोर ! मेरे ताजा!
जीवन का रस छन जाने दे, तन को पत्थर बन जाने दे।
तू स्वयं तेज भयकारी है,
क्या कर सकती चिनगारी है?

वर्षों तक वन में घूम-घूम, बाधा-विघ्नों को चूम-चूम,
सह धूप-घाम, पानी-पत्थर, पांडव आये कुछ और निखर।
सौभाग्य न सब दिन सोता है,
देखें, आगे क्या होता है,

मैत्री की राह बताने को, सबको सुमार्ग पर लाने को,
दुर्योधन को समझाने को, भीषण विध्वंस बचाने को,
भगवान् हस्तिनापुर आये
पांडव का संदेशा लाये।

'दो न्याय अगर तो आधा दो, पर, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे,
परिजन पर असि न उठायेंगे!

दुर्योधन वह भी दे न सका, आशिष समाज की ले न सका,
उलटे, हरि को बाँधने चला, जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है।

हरि ने भीषण हुंकार किया, अपना स्वरूप-विस्तार किया,
डगमग-डगमग दिग्गज डोले, भगवान् कुपित होकर बोले–
'जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,
हाँ, हाँ दुर्योधन ! बाँध मुझे।

'यह देख, गगन मुझमें लय है, यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल, मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें,
संहार झूलता है मुझमें।

'उदयाचल मेरा दीप्त भाल, भूमंडल वक्षस्थल विशाल,
भुज परिधि-बन्ध को घेरे हैं, मैनाक-मेरु पग मेरे हैं।
दिपते जो ग्रह नक्षत्र निकर,
सब हैं मेरे मुख के अन्दर।

'दृग हों तो दृश्य अकाण्ड देख, मुझमें सारा ब्रह्माण्ड देख,
चर-अचर जीव, जग, क्षर-अक्षर, नश्वर मनुष्य सुरजाति अमर।
शत कोटि सूर्य, शत कोटि चन्द्र,
शत कोटि सरित, सर, सिन्धु मन्द्र।

'शत कोटि विष्णु, ब्रह्मा, महेश, शत कोटि विष्णु जलपति, धनेश,
शत कोटि रुद्र, शत कोटि काल, शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
जञ्जीर बढ़ाकर साध इन्हें,
हाँ-हाँ दुर्योधन! बाँध इन्हें।

'भूलोक, अतल, पाताल देख, गत और अनागत काल देख,
यह देख जगत् का आदि-सृजन, यह देख, महाभारत का रण;
मृतकों से पटी हुई भू है,
पहचान, कहाँ इसमें तू है।

'अम्बर में कुन्तल-जाल देख, पद के नीचे पाताल देख,
मुट्ठी में तीनों काल देख, मेरा स्वरूप विकराल देख।
सब जन्म मुझी से पाते हैं,
फिर लौट मुझी में आते हैं।

'जिह्वा से कढ़ती ज्वाल सघन, साँसों में पाता जन्म पवन,
पड़ जाती मेरी दृष्टि जिधर, हँसने लगती है सृष्टि उधर!
मैं जभी मूँदता हूँ लोचन,
छा जाता चारों ओर मरण।

'बाँधने मुझे तो आया है, जंजीर बड़ी क्या लाया
यदि मुझे बाँधना चाहे मन, पहले तो बाँध अनन्त ग
सूने को साध न सकता है,
वह मुझे बाँध कब सकता है?

'हित-वचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहच
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ, अन्तिम संकल्प सुनाता
याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन-जय या कि मरण होगा।

'टकरायेंगे नक्षत्र-निकर, बरसेगी भू पर वह्नि प्र
फण शेषनाग का डोलेगा, विकराल काल मुँह खोले
दुर्योधन! रण ऐसा होगा।
फिर कभी नहीं जैसा होगा।

'भाई पर भाई टूटेंगे, विष-बाण बूँद-से छ
वायस-शृगाल सुख लूटेंगे, सौभाग्य मनुज के फू
आखिर तू भूशायी होगा,
हिंसा का पर, दायी होगा।'

थी सभा सन्न, सब लोग डरे, चुप थे या थे बेहोश
केवल दो नर न अघाते थे, धृतराष्ट्र-विदुर सुख पाते
कर जोड़ खड़े प्रमुदित, निर्भय,
दोनों पुकारते थे 'जय-जय'!

3

भगवान् सभा को छोड़ चले, करके रण-गर्जन घोर
सामने कर्ण सकुचाया-सा, आ मिला चकित, भरमाया-
हरि बड़े प्रेम से कर धर कर,
ले चढ़े उसे अपने रथ पर।

रथ चला, परस्पर बात चली, शम-दम की टेढ़ी घात चली,
शीतल हो हरि ने कहा, 'हाय, अब शेष नहीं कोई उपाय।
हो विवश हमें धनु धरना है,
क्षत्रिय-समूह को मरना है।

'मैंने कितना कुछ कहा नहीं? विष-व्यंग कहाँ तक सहा नहीं?
पर, दुर्योधन मतवाला है, कुछ नहीं समझनेवाला है।
चाहिए उसे बस रण केवल,
सारी धरती कि मरण केवल।

'हे वीर ! तुम्हीं बोलो अकाम, क्या वस्तु बड़ी थी पाँच ग्राम?
वह भी कौरव को भारी है, मति गई मूढ़ की मारी है।
दुर्योधन को बोधूँ कैसे?
इस रण को अवरोधूँ कैसे?

'सोचो क्या दृश्य विकट होगा, रण में जब काल प्रकट होगा?
बाहर शोणित की तप्त धार, भीतर विधवाओं की पुकार।
निरशन, विषण्ण बिललायेंगे,
बच्चे अनाथ चिल्लायेंगे।

'चिन्ता है, मैं क्या और करूँ? शान्ति को छिपा किस ओट धरूँ?
सब राह बन्द मेरे जाने, हाँ, एक बात यदि तू माने,
तो शान्ति नहीं जल सकती है,
समराग्नि अभी टल सकती है।

'पा तुझे धन्य है दुर्योधन, तू एकमात्र उसका जीवन।
तेरे बल की है आस उसे, तुझसे जय का विश्वास उसे।
तू संग न उसका छोड़ेगा,
वह क्यों रण से मुख मोड़ेगा?

'क्या अघटनीय घटना कराल? तू पृथा-कुक्षि का प्रथम लाल,
बन सूत अनादर सहता है, कौरव के दल में रहता है,
शर-चाप उठाये आठ प्रहर,
पांडव से लड़ने को तत्पर।

'माँ का सनेह पाया न कभी, सामने सत्य आया न कभी,
किस्मत के फेरे में पड़ कर, पा प्रेम बसा दुश्मन के घर।
निज बन्धु मानता है पर को,
कहता है शत्रु सहोदर को।

'पर, कौन दोष इसमें तेरा? अब कहा मान इतना मेरा।
चल होकर संग अभी मेरे, हैं जहाँ पाँच भ्राता तेरे।
बिछुड़े भाई मिल जायेंगे,
हम मिलकर मोद मनायेंगे।

'कुन्ती का तू ही तनय ज्येष्ठ, बल, बुद्धि, शील में परम श्रेष्ठ।
मस्तक पर मुकुट धरेंगे हम, तेरा अभिषेक करेंगे हम।
आरती समोद उतारेंगे,
सब मिलकर पाँव पखारेंगे।

'पद-त्राण भीम पहनायेगा, धर्माधिप चँवर डुलायेगा।
पहरे पर पार्थ प्रवर होंगे, सहदेव-नकुल अनुचर होंगे।
भोजन उत्तरा बनायेगी,
पाञ्चाली पान खिलायेगी।

'आहा ! क्या दृश्य सुभग होगा ! आनन्द-चमत्कृत जग होगा।
सब लोग तुझे पहचानेंगे, असली स्वरूप में जानेंगे।
खोयी मणि को जब पायेगी,
कुन्ती फूली न समायेगी।

'रण अनायास रुक जायेगा, कुरुराज स्वयं झुक जायेगा
संसार बड़े सुख में होगा, कोई न कहीं दुःख में होगा।
सब गीत खुशी के गायेंगे,
तेरा सौभाग्य मनायेंगे।

'कुरुराज्य समर्पण करता हूँ, साम्राज्य समर्पण करता हूँ,
यश मुकुट मान, सिंहासन ले, बस एक भीख मुझको दे दे।
कौरव को तज रण रोक सखे,
भू का हर भावी शोक सखे।'

सुन-सुन कर कर्ण अधीर हुआ, क्षण एक तनिक गंभीर हुआ,
फिर कहा, 'बड़ी यह माया है, जो कुछ आपने बताया है।
दिनमणि से सुनकर वही कथा,
मैं भोग चुका हूँ ग्लानि-व्यथा।

'जब ध्यान जन्म का धरता हूँ, उन्मन यह सोचा करता हूँ,
कैसी होगी वह माँ कराल, निज तन से जो शिशु को निकाल,
धाराओं में धर आती है,
अथवा जीवित दफनाती है?

'सेवती मास दस तक जिसको, पालती उदर में रख जिसको,
जीवन का अंश खिलाती है, अन्तर का रुधिर पिलाती है;
आती फिर उसको फेंक कहीं,
नागिन होगी, वह नारि नहीं।

'हे कृष्ण ! आप चुप ही रहिए, इस पर न अधिक कुछ भी कहिए,
सुनना न चाहते तनिक श्रवण, जिस माँ ने मेरा किया जनन,
वह नहीं नारि कुलपाली थी,
सर्पिणी परम विकराली थी।

'पत्थर-समान उसका हिय था, सुत से समाज बढ़ कर प्रिय था,
गोदी में आग लगा करके, मेरा कुल-वंश छिपा करके,
दुश्मन का उसने काम किया,
माताओं को बदनाम किया।

'माँ का पय भी न पिया मैंने, उलटे, अभिशाप लिया मैंने।
वह तो यशस्विनी बनी रही, सबकी भौं मुझपर तनी रही।
कन्या वह रही अपरिणीता,
जो कुछ बीता, मुझपर. बीता।

'मैं जाति-गोत्र से हीन, दीन, राजाओं के सम्मुख मलीन,
जब रोज अनादर पाता था, कह 'शूद्र' पुकारा जाता था।
पत्थर की छाती फटी नहीं,
कुन्ती तब भी तो कटी नहीं।

'मैं सूत-वंश में पलता था, अपमान-अनल में जलता था,
सब देख रही थी दृश्य पृथा, माँ की ममता, पर, हुई वृथा।
छिप कर भी तो सुधि ले न सकी,
छाया अञ्चल की दे न सकी।

'पा पाँच तनय फूली-फूली, दिन-रात बड़े सुख में भूली
कुन्ती गौरव में चूर रही, मुझ पतित पुत्र से दूर रही
क्या हुआ कि अब अकुलाती है?
किस कारण मुझे बुलाती है?

'क्या पाँच पुत्र हो जाने पर, सुत के धन-धाम गँवाने प
या महानाश के छाने पर, अथवा मन के घबराने प
नारियाँ सदय हो जाती हैं?
बिछुड़े को गले लगाती हैं?

'कुन्ती जिस भय से भरी रही, तज तुझे दूर हट खड़ी रही,
वह पाप अभी भी है मुझमें, वह शाप. अभी भी है मुझमें।
क्या हुआ कि वह डर जायेगा?
कुन्ती को काट न खायेगा?

'सहसा क्या हाल विचित्र हुआ? मैं कैसे पुण्य-चरित्र हुआ?
कुन्ती का क्या चाहता हृदय? मेरा सुख या पाण्डव की जय?
यह अभिनन्दन नूतन क्या है?
केशव! यह परिवर्तन क्या है?

'मैं हुआ धनुर्धर जब नामी, सब लोग हुए हित के कामी,
पर, ऐसा भी था एक समय, जब यह समाज निष्ठुर निर्दय,
किंचित् न स्नेह दर्शाता था,
विषव्यंग्य सदा बरसाता था।

'उस समय सुअंक लगा करके, अंचल के तले छिपा करके,
चुम्बन से कौन मुझे भर कर, ताड़ना-ताप लेती थी हर?
राधा को छोड़ भजूँ किसको?
जननी है वही, तजूँ किसको?

'हे कृष्ण ! जरा यह भी सुनिये, सच है कि झूठ, मन में गुनिये।
धूलों में था मैं पड़ा हुआ, किसका सनेह पा बड़ा हुआ?
किसने मुझको सम्मान दिया,
नृपता दे महिमावान किया?

'अपना विकास अवरुद्ध देख, सारे समाज को क्रुद्ध देख,
भीतर जब टूट चुका था मन, आ गया अचानक दुर्योधन।
निश्छल, पवित्र अनुराग लिये,
मेरा समस्त सौभाग्य लिये।

'कुन्ती ने केवल जन्म दिया, राधा ने माँ का कर्म किया,
पर कहते जिसे असल जीवन, देने आया वह दुर्योधन।
वह नहीं भिन्न माता से है,
बढ़ कर सोदर भ्राता से है।

'राजा रंक से बना करके, यश, मान, मुकुट पहना करके,
बाँहों पर मुझे उठा करके, सामने जगत् के ला करके,
करतब क्या-क्या न किया उसने?
मुझको नव-जन्म दिया उसने।

'है ऋणी कर्ण का रोम-रोम, जानते सत्य यह सूर्य-सोम,
तन, मन, धन दुर्योधन का है, यह जीवन दुर्योधन का है।
सुरपुर से भी मुख मोड़ूँगा,
केशव! मैं उसे न छोड़ूँगा।

'सच है, मेरी है आस उसे, मुझपर अटूट विश्वास उसे,
हाँ, सच है मेरे ही बल पर, ठाना है उसने महासमर।
पर, मैं कैसा पापी हूँगा,
दुर्योधन को धोखा दूँगा?

'रह साथ सदा खेला, खाया, सौभाग्य-सुयश उससे पाया,
अब जब विपत्ति आने को है, घनघोर प्रलय छाने को है,
तज उसे भाग यदि जाऊँगा,
कायर, कृतघ्न कहलाऊँगा।

'मैं भी कुन्ती का एक तनय, जिसको होगा इसका प्रत्यय?
संसार मुझे धिक्कारेगा, मन में वह यही विचारेगा,
फिर गया तुरत, जब राज मिला,
यह कर्ण बड़ा पापी निकला।

'मैं ही न सहूँगा विषम डंक, अर्जुन को भी होगा कलंक,
सब लोग कहेंगे, डरकर ही, अर्जुन ने अद्‌भुत नीति गही।
चल चाल कर्ण को फोड़ लिया,
सम्बन्ध अनोखा जोड़ लिया।

'कोई न कहीं भी चूकेगा, सारा जग मुझपर थूकेगा,
तप, त्याग, शील, जप, योग, दान, मेरे होंगे मिट्टी-समान।
लोभी लालची कहाऊँगा,
किसको, क्या मुख दिखलाऊँगा।

'जो आज आप कह रहे आर्य, कुन्ती के मुख से कृपाचार्य
सुन वही, हुए लज्जित होते, हम क्यों रण को सज्जित होते?
मिलता न कर्ण दुर्योधन को,
पाण्डव न कभी जाते वन को।

'लेकिन, नौका तट छोड़ चली, कुछ पता नहीं, किस ओर चली।
यह बीच नदी की धारा है, सूझता न कूल-किनारा है।
ले लील भले यह धार मुझे,
लौटना नहीं स्वीकार मुझे।

'धर्माधिराज का ज्येष्ठ बनूँ ? भारत में सबसे श्रेष्ठ बनूँ?
कुल की पोशाक पहन करके, सिर उठा चलूँ कुछ तन करके?
इस झूठ-मूठ में रस क्या है?
केशव! यह सुयश सुयश क्या है?

'सिर पर कुलीनता का टीका, भीतर जीवन का रस फीका,
अपना न नाम जो ले सकते, परिचय न तेज से दे सकते,
ऐसे भी कुछ नर होते हैं,
कुल को खाते औ' खोते हैं।

क्रमी पुरुष लेकिन, सिर पर, चलता न छत्र पुरखों का धर,
ना बल-तेज जगाता है, सम्मान जगत् से पाता है।
सब उसे देख ललचाते हैं,
कर विविध यत्न अपनाते हैं।

कुल-गोत्र नहीं साधन मेरा, पुरुषार्थ एक बस धन मेरा,
ल ने तो मुझको फेंक दिया, मैंने हिम्मत से काम लिया।
अब वंश चकित भरमाया है,
खुद मुझे खोजने आया है।

लेकिन, मैं लौट चलूँगा क्या ? अपने प्रण से विचलूँगा क्या?
ण में कुरुपति का विजय-वरण, या पार्थ-हाथ कर्ण का मरण।
हे कृष्ण! यही मति मेरी है,
तीसरी नहीं गति मेरी है।

'मैत्री की बड़ी सुखद छाया, शीतल हो जाती है काया,
धिक्कार-योग्य होगा वह नर, जो पाकर भी ऐसा तरुवर,
हो अलग खड़ा कटवाता है,
खुद आप नहीं कट जाता है।

'जिस नर की बाँह गही मैंने, जिस तरु की छाँह गही मैंने,
उस पर न वार चलने दूँगा, कैसे कुठार चलने दूँगा?
जीते जी उसे बचाऊँगा,
या आप स्वयं कट जाऊँगा।

'मित्रता बड़ा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन?
धरती की तो है क्या बिसात? आ जाय अगर बैकुण्ठ हाथ,
उसको भी न्योछावर कर दूँ,
कुरुपति के चरणों पर धर दूँ।

'सिर लिये स्कन्ध पर चलता हूँ, उस दिन के लिए मचलता
यदि चले वज्र दुर्योधन पर, ले लूँ बढ़कर अपने ऊप
कटवा दूँ उसके लिए गला,
चाहिए मुझे क्या और भला?

'सम्राट् बनेंगे धर्मराज, या पायेगा कुरुराज ताज
लड़ना भर मेरा काम रहा, दुर्योधन का संग्राम रहा
मुझको न कहीं कुछ पाना है,
केवल ऋण मात्र चुकाना है।

'कुरुराज्य चाहता मैं कब हूँ, साम्राज्य चाहता मैं कब हूँ?
क्या नहीं आपने भी जाना? मुझको न आज तक पहचाना?
जीवन का मूल्य समझता हूँ,
धन को मैं धूल समझता हूँ।

'धनराशि जोगना लक्ष्य नहीं, साम्राज्य भोगना लक्ष्य नहीं,
भुजबल से कर संसार-विजय, अगणित समृद्धियों का सञ्चय,
दे दिया मित्र दुर्योधन को,
तृष्णा छू भी न सकी मन को।

'वैभव-विलास की चाह नहीं, अपनी कोई परवाह नहीं,
बस, यही चाहता हूँ केवल, दान की देव-सरिता निर्मल,
करतल से झरती रहे सदा,
निर्धन को भरती रहे सदा!

'तुच्छ है, राज्य क्या है केशव? पाता क्या नर कर प्राप्त विभव?
चिन्ता प्रभूत, अत्यल्प हास, कुछ चाकचिक्य, कुछ क्षण विलास,
पर, वह भी यहीं गँवाना है,
कुछ साथ नहीं ले जाना है।

'मुझ-से मनुष्य जो होते हैं, कञ्चन का भार न ढोते हैं।
पाते हैं धन बिखराने को, लाते हैं रतन लुटाने को।
जग से न कभी कुछ लेते हैं,
दान ही हृदय का देते हैं।

'प्रासादों के कनकाभ शिखर, होते कबूतरों के ही घर,
महलों में गरुड़ न होता है, कञ्चन पर कभी न सोता है।
बसता वह कहीं पहाड़ों में,
शैलों की फटी दरारों में।

'होकर समृद्धि-सुख के अधीन, मानव होता नित तपःक्षीण,
सत्ता, किरीट, मणिमय आसन, करते मनुष्य का तेज-हरण।
नर विभव-हेतु ललचाता है,
पर वही मनुज को खाता है।

'चाँदनी, पुष्पछाया में पल, नर भले बने सुमधुर, कोमल,
पर, अमृत क्लेश का पिये बिना, आतप, अन्धड़ में जिये बिना,
वह पुरुष नहीं कहला सकता,
विघ्नों को नहीं हिला सकता।

'उड़ते जो झञ्झावातों में, पीते जो वारि प्रपातों में,
सारा आकाश अयन जिनका, विषधर भुजंग भोजन जिनका,
वे ही फणिबन्ध छुड़ाते हैं,
धरती का हृदय जुड़ाते हैं।

'मैं गरुड़, कृष्ण! मैं पक्षिराज, सिर पर न चाहिए मुझे ताज,
दुर्योधन पर है विपद् घोर, सकता न किसी विधि उसे छोड़।
रणखेत पाटना है मुझको,
अहिपाश काटना है मुझको।

'संग्राम-सिन्धु लहराता है, सामने प्रलय घहराता है,
रह-रहकर भुजा फड़कती है, बिजली-सी नसें कड़कती हैं,
चाहता तुरत मैं कूद पड़ूँ,
जीतूँ कि समर में डूब मरूँ।

'अब देर नहीं कीजै केशव! अवसेर नहीं कीजै केशव!
धनु की डोरी तन जाने दें, संग्राम तुरत ठन जाने दें।
ताण्डवी तेज लहरायेगा,
संसार ज्योति कुछ पायेगा।

'पर, एक विनय है मधुसूदन! मेरी यह जन्म-कथा गोपन;
मत कभी युधिष्ठिर से कहिए, जैसे हो, इसे दबा रहिए।
वे इसे जान यदि पायेंगे,
सिंहासन को ठुकरायेंगे।

'साम्राज्य न कभी स्वयं लेंगे, सारी सम्पत्ति मुझे देंगे,
मैं भी न उसे रख पाऊँगा, दुर्योधन को दे जाऊँगा।
पाण्डव वञ्चित रह जायेंगे,
दुख से न छूट वे पायेंगे।

'अच्छा, अब चला, प्रमाण आर्य! हों सिद्ध समर के शीघ्र कार्य,
रण में ही अब दर्शन होगा, शर से चरण-स्पर्शन होगा।
जय हो, दिनेश नभ में विहरें,
भूतल में दिव्य प्रकाश भरें।'

'रथ से राधेय उतर आया, हरि के मन में विस्मय छाया,
बोले कि 'वीर! शत बार धन्य, तुझ-सा न मित्र कोई अनन्य।
तू कुरुपति का ही नहीं प्राण,
नरता का है भूषण महान्।'

चतुर्थ सर्ग

'जीवन का अभियान दान-बल से अजस्र चलता है,
उतनी बढ़ती ज्योति, स्नेह जितना अनल्प जलता है।
और दान में रोकर या हँस कर हम जो देते हैं,
अहंकारवश उसे स्वत्व का त्याग मान लेते हैं।

यह न स्वत्व का त्याग, दान तो जीवन का झरना है,
रखना उसको रोक, मृत्यु के पहले ही मरना है।
किस पर करते कृपा वृक्ष, यदि अपना फल देते हैं?
गिरने से उसको सँभाल, क्यों रोक नहीं लेते हैं।

ऋतु के बाद फलों का रुकना डालों का सड़ना है,
मोह दिखाना देय वस्तु पर आत्मघात करना है।
देते तरु इसलिए कि रेशों में मत कीट समायें,
रहें डालियाँ स्वस्थ और फिर नये-नये फल आयें।

सरिता देती वारि कि पाकर उसे सुपूरित घन हो,
बरसे मेघ, भरे फिर सरिता, उदित नया जीवन हो।
आत्मदान के साथ जगज्जीवन का ऋजु नाता है,
जो देता जितना बदले में उतना ही पाता है।

दिखलाना कार्पण्य आप, अपने धोखा खाना है,
रखना दान अपूर्ण, रिक्ति निज का ही रह जाना है।
व्रत का अन्तिम मोल चुकाते हुए न जो रोते हैं,
पूर्ण-काम जीवन से एकाकार वही होते हैं।